सूफी सम्प्रदाय

मुकेश कुमार दूबे*

'सूफी' शब्द का व्यवहार इस्लाम धर्म के रहस्यवादियों के लिए किया जाता है और 'इस्लाम' का रहस्यवाद अथवा सूफियों का दर्शन ही 'तसव्वुफ' है। 'सूफीमत' या तसव्वुफ' को परिभाषित करते हुए मारूफ–अल–करखी ने बतलाया कि परम सत्य का ज्ञान प्राप्त करना ही तसव्वुफ है और इसीलिए मुस्लिम रहस्यवादी अपने को 'अन्ह–अल–हक्क' कहते हैं।[1]

यद्यपि 'सूफी' शब्द का व्यवहार इस्लाम धर्म के रहस्यवादियों के लिए किया जाता है फिर भी यह समझना गलत होगा कि अलग ही उनका एक कोई विशेष संगठित सम्प्रदाय था और उनका एक अलग ही विशेष सैद्धान्तिक मतवाद था। वस्तुतः वे मुस्लिम समाज के अन्तर्गत थे और इस्लाम के मूलभूत सिद्धान्तों से अलग जाने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे।[2] वैसे उनके विश्वास, उनकी धारणायें तथा क्रिया–कलाप सनातन पन्थी इस्लाम से हूबहू मेल नहीं खाते थे, बल्कि इस्लाम के कठोर नियम–कानूनों को पूर्णतया वे व्यवहार में प्रायः नहीं लाते थे। वे कर्मकाण्ड के विरोधी थे। उनमें धीरे–धीरे स्वतंत्र विचारधारा का विकास हुआ। परिणाम यह हुआ कि इस्लाम की शिक्षाओं को वे अनुभव और तर्क की कसौटी पर कसने लगे।[3]

वस्तुतः 'सूफीवाद' अथवा 'तसव्वुफ' उच्च स्तर के स्वतंत्र विचार का स्वरूप है[4] जो मनुष्य को ईश्वर के समीप ले जाता है। सैद्धान्तिक रूप से जहाँ अन्य धर्मों के रहस्यवादियों की भांति सूफियों का चरम लक्ष्य भी परमात्मा के साथ मिलन था, उसके साथ एकत्व प्राप्त करना था[5], वहाँ व्यावहारिक रूप से ईश्वर तथा मानव सेवा उनका ध्येय था।[6]

भिन्न–भिन्न देशों में विकसित होता हुआ सूफीमत, हिन्दुस्तान में प्रवेश किया। हिन्दुस्तान आने वाले, सूफियों का सम्बन्ध विभिन्न सिलसिलों से था। ये लोग स्वेच्छा से ही हिन्दुस्तान आये थे, किसी संस्था के आदेश पर नहीं। उनका जीवन पवित्र था। उनके पवित्र आचरण ने यहां की जनता को शीध्र ही अपनी ओर आकृष्ट कर लिया आकृष्ट कर लिया[7] और 16वीं–17वीं सदी तक आते–आते सूफी खानकाहों का प्रभाव हिन्दुस्तान के विभिन्न क्षेत्रों तक फैल गया। यद्यपि अबुल फजल ने 14 सूफी सम्प्रदायों का उल्लेख किया है किन्तु उनमें चिश्ती, सुहरावर्दी, नक्शबंदी व कादिरी सम्प्रदाय प्रमुख थे। अन्य स्थानों की भांति सूबा अवध में भी अनेक सिलसिलों से सम्बन्धित सूफी आकर बस गये व अपने सिद्धान्तों व विचारों से यहाँ की ग्रामीण जनता को प्रभावित किया।

मुगल काल से पूर्व सूफी मुख्यतः दो सिद्धान्तों पर विश्वास करते थे, पहला –'वहदत–उल–वुजुद', जिसके प्रतिपादक मुहिउद्दीन इब्न–अल–अरबी थे[8] व दूसरा सिद्धान्त था 'वहदत–उश–शुहूद' जिसके प्रतिपादक शेख अलाउद्दीन सिम्मानी थे।[9] वहदत–उल–वुजूद के अनुसार वास्तविक सत्ता एक है। उस सत्ता के सिवा अन्य किसी सत्ता का अस्तित्व नहीं है। एक मात्र सत्ता–परमात्मा है। यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत उसी परम सत्ता की अभिव्यक्ति है अतएव परमात्मा और जगत में साम्य है। दूसरे सिद्धान्त वहदत–उल–शुहुद के अनुसार सूफी रहस्यवाद की उच्च स्तरीय अनुभूति से यह प्रकट होता है कि ईश्वर और सृष्टि के बीच अंतर होता है न कि इनमें समायोजन। यह विचार शरिया के विचार की पुष्टि करता है। किन्तु मुगलकाल तक आते–आते तीन सूफी धाराओं की पहचान की जा सकती है। एक ओर तो वे सूफी थे जो वहदत उल वुजूद का प्रतिपादन करते थे और शरिया की अवहेलना करते थे। दूसरी ओर वे सूफी थे, जो वुजूदी विचारों का खण्डन करते थे और वहदत–उश–शुहूद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के साथ शरिया का सख्ती से पालन करते थे तथा हिन्दुओं और गैर–सुन्नी मुसलमानों के प्रति अपेक्षाकृत असहिष्णुता का दृष्टिकोण अपनाते थे। इन दो प्रकार के सूफियों के बीच तीसरे प्रकार के सूफी वे थे जो शरिया और सर्वात्यवादी सिद्धान्त 'वहदत–उल–वुजूद' में कोई अन्तर नहीं देखते थे और हिन्दू विचारधारा को ग्रहण करना भी शरिया के विरूद्ध नहीं समझते थे। यहाँ पर यह मध्यमार्ग का अनुसरण करते थे तथा दोनों अतिवादी परम्परा से दूर रहते थे।[11]

सूबा अवध के प्रमुख सूफी सन्तों का विवरण निम्नलिखित है–

हजरत शाह पीर मोहम्मद

हजरत शाह पीर मोहम्मद मण्डायाऊ (जौनपुर) के रहने वाले थे। जौनपुर, मक्का, मदीना, दिल्ली, अजमेर तथा कन्नौज में शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् जौनपुर से 1675 ई0 में लखनऊ चले आये थे। लम्बे समय तक वे शाह मीना साहब के मजार पर रहे व आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त किया। उसके बाद वे शाह अब्दुल्ला, सैय्यद चिश्ती से अत्यधिक प्रभावित हुए व उनके मुरीद हो गये और अपना सारा जीवन अध्ययन–अध्यापन में लगा

* शोध छात्र, बुद्ध पी0जी0 कालेज कुशीनगर

दिया।[12] लखनऊ में शाह पीर मोहम्मद गोमती नदी के निकट लक्ष्मण टीले पर रहते थे। जहाँ मरने के बाद उन्हें दफनाया गया। उनके यहाँ रहने के कारण शीध्र ही वह पुराना टीला 'लक्ष्मण टीले' से शाह पीर मोहम्मद का टीला' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।[13] टीले के ऊपर शाह साहब की मजार है यहाँ लोग श्रद्धा भाव से आज भी मुरादें भांगते हैं। सम्राट शाहजहाँ के शासनकाल में एक सूबेदार ने यहाँ एक खूबसूरत व शानदार मस्जिद का निर्माण कराया था जो शाही मस्जिद कहलाती थी।[14] शाह साहब हिन्दू–मुस्लिम दोनों ही वर्गों के लिए समान रूप से श्रद्धा के केन्द्र थे।

सैय्यद सालार मसूद गाजी

अवध आने वाले पुराने सूफियों की श्रृंखला में ही महान सूफी सैय्यद सालार मसूद गाजी का नाम भी उल्लेखनीय है। अवध सूबा के सरकार बहराइच में सालार मसूद गाजी का दरगाह और रजब सालार का मकबरा था जो आज भी है। रजब सालार तुगलक शाह के भाई व सालार मसूद गाजी महमूद गजनी के भांजे थे।[15] कहा जाता है कि वे सुल्तान महमूद की सेना के एक सैनिक थे।[16] वह 14 रजब व 424 हि0 अर्थात् 1006 ई0 को बहराइच में शहीद हुए। वहीं उनका मकबरा बना था। वह अबू मोहम्मद चिश्ती के मुरीद थे। इस दरगाह की जयारत के लिए दूर–दूर से लोग यहाँ आते थे। वर्तमान में ज्येष्ठ माह के पहले रविवार को यहाँ मेला भी लगता है। सुल्तान फिरोज शाह तुगलक तिरहुत अभियान के पश्चात् बनारस होता हुआ बहराइच (1374–75) आया और अपने स्वास्थ्य लाभ के लिए सालार मसूदगाजी के मकबरे पर गया।[17] इसी स्थान पर बालारख नामक एक महान दर्वेश भी रहते थे। दरगाह के अन्दर सीधी और एक काने में एक छोटा सा गोल हौज है जो बालाकुण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। अधिकांश हिन्दू इसे अग्निकुण्ड बालारख या बालारख की धूनी बताते हैं। कब्र के चढ़ावे दरगाह के मुजावर तथा कुण्ड की पूजा के चढ़ावे पण्डे पाते है।[18] सैय्यद सालार मसूद गाजी की दरगाह सरकार बहराइच के ग्रामीण क्षेत्र में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण सूबे में खासा लोकप्रिय थी। यहां पर ग्रामीण जन बड़ी आस्था के साथ जाते थे तथा अपनी मुरादे पूरी होने की कामना करते थे। इस स्थान पर न केवल मुस्लिम, अपितु बड़ी संख्या में हिन्दू लोग भी जाते थे। वास्तव में यह स्थान हिन्दू–मुस्लिम एकता के परिचायक के रूप में है।

शेख महिबुल्लाह

शेख महिबुल्लाह साहब का जन्म 1587ई0 में अवध सूबा के अधीन सरकार खैराबार के परगना सदरपुर में हुआ था।[19] प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त इन्होंने मुल्ला अब्दुल सलाम लाहौरी से लाहौर जाकर ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद ये सदरपुर लौट आये व अबु सईद से शिष्यवत्व ग्रहण किया। तत्पश्चात् ये चिश्ती सन्त अब्दुल रहमान चिश्ती के सम्पर्क में आये। अन्त में ये 1628 में इलाहाबाद आ गये और यहीं से अपनी गतिविधियों का संचालन किया। इनकी प्रसिद्धि दूर–दूर तक फैली हुई थी। इनकी प्रसिद्धि से न केवल आम जन अपितु तत्कालीन शासक वर्ग भी प्रभावित था। मुगल सम्राट शाहजहाँ ने तो इनको दरबार में आने के लिए आमन्त्रित किया था। शेख साहब ने सम्राट के निमंत्रण को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि वे किसी भी प्रकार की राजनीतिक गतिविधि में नहीं उलझना चाहते थे।[20] शाहजादा दाराशिकोह भी इनका बड़ा आदर करता था तथा इनकी विद्वत्ता से प्रभावित था। शेख साहब की विद्वत्ता व आदर्शों से तत्कालीन अवध की ग्रामीण जनता अत्यन्त प्रभावित थी।

हजरत मीना शाह

हजरत साहब अपने दादा हजरत शाह कयामुद्दीन अब्बासी के साथ अवध आये थे। उन्होंने अपना निवास स्थान मच्छी भवन के समीप बनाया। शाह कयामुद्दीन स्वयं खासे लोकप्रिय थे। उनके मुरीदों की संख्या भी अत्यधिक थी। इन्हीं के एक शिष्य मखदूम शेख सारंग थे। इनकी मजार मजगाँव शरीफ तहसील फतेहपुर जिला बाराबंकी में बना था। मीना शाह इन्हीं के मुरीद थे। शाहमीना साब अन्य सूफियों की भाँति ही अत्यन्त प्रसिद्ध थे। वर्तमान में शाह साहब की मजार लखनऊ मेडिकल कालेज के समीप स्थित है।[21] इनकी मृत्यु 884 हि0 अर्थात 1497 ई0 में हुई थी।[22] मीना साहब के मजार पर न केवल तत्कालीन समय में अपितु बाद के काल में भी लोग दूर–दूर से जियारत करने आते थे तथा अपनी मन्नत पूरी होने पर चादर चढ़ाते थे। वर्तमान में भी मीना साहब हिन्दू–मुस्लिम दोनों ही सम्प्रदायों के लोगों के मध्य श्रद्धा के केन्द्र है।

मलिक मोहम्मद जायसी

मलिक मोहम्मद जायसी सूफी सन्त नहीं थे, फिर भी उनकी रचनाओं में सूफी–परम्परा की झलक मिलती है। अमेठी के राजघराने में जायसी का बहुत मान था। उन्होंने अनेक काव्यों की रचना की, किन्तु पद्मावत जायसी की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें उन्होंने प्रेम साधना की विस्तृत विवेचना की है। वस्तुतः इसी केन्द्र पर पद्मावत की सम्पूर्ण कथा स्थित है। सैय्यद अशरफ से उनके हृदय में प्रेम का दीपक जला था। उनकी प्रेरमा से ही उन्होंने पद्मावत की रचना की।[23] महदवी सम्प्रदाय के सन्त कालपी निवासी शेख बुरहान उनके गुरु थे।[24] पद्मावत की रचना शेरशाह के समय में की गयी थी। इसमें कवि ने इतिहास कल्पना और लोकतत्वों को एक साथ जोड़कर अपनी कथा की रूपरेखा खड़ी की। जायसी अवध क्षेत्र के आम–जन के हृदय में बसे थे,[25] वस्तुतः

इसीलिए पद्मिनी और हीरामन सुग्गा (तोता) की कथा आज भी भोजपुरी तथा अवधी क्षेत्रों में किसी न किसी रूप में प्रचलित है।[26]

इस प्रकार जायसी की रचनाएँ अत्यन्त उच्च भावभूमि पर स्थित हैं। यद्यपि जायसी ने लौकिक कथाओं का सहारा लिया है, किन्तु इसमें एक स्वस्थ दर्शन की प्राणधारा सर्वत्र दिखाई पड़ती है। अपनी परम्परागत मान्यताओं स कवि कहीं दूर नहीं हटा है। काव्य की आवश्यकताओं की भरपूर रक्षा करते हुए ईश्वर आत्मा, प्रेम, विरह तथा संसार के प्रति सूफी–साधक का जो दृष्टिकोण होता है, उसका निर्वाह महाकवि जायसी ने सम्यक्रूपेण किया है।

खमन पीर

शाह खमन पीर एक महान सूफी सन्त थे। इनका पूरा नाम सैय्यद कयामुद्दीन उर्फ खान खमन पीर था। कहा जाता है कि शाह खमन पीर मसूद गाजी के साथ भारत आये थे और लखनऊ में बस गये थे। इनका मजार लखनऊ में ही है। न केवल मध्यकाल में, अपितु आज भी इनके मजार पर उर्स का बड़ा भारी मेला लगता है, जो कई दिनों तक चलता है। सूबा अवध की ग्रामीण जनता की श्रद्धा के ये केन्द्र थे। लोग इनकी मजार पर भारी संख्या में जुट कर मन्नतें व मुरादें माँगते थे।[27]

नजीब शाह

नजीब शाह दरवेश की गणना महान् सूफी सन्तों में होती है। इनकी दरगाह रायबरेली में पाटन इलाके की सीमा पर है। प्रत्येक वर्ष पौष माह की नव चन्दी जुमेरात अर्थात उक्त मास के प्रथम वृहस्पतिवार को यहाँ बड़े धूम–धाम से मेला लगता था, जिसमें दूर–दूर से लोग आकर भाग लेते थे। आम जन यहाँ बड़े श्रद्धाभाव से चादर चढ़ाते थे और मुरादें माँगते थे। नजीब शाह दरवेश के उर्स के अवसर पर यहाँ लगने वाले मेले का प्रचलन आज भी है। ऐसा माना जाता है कि यहाँ आने वालों के कष्ट दूर होते हैं। यहाँ पर लोगों की मुरादें पूरी होती थीं। इसीलिए यह स्थान प्रसिद्ध था।[28]

जोहरा बीबी

जोबरा बीबी सैय्यद जलालुद्दीन की पुत्री थीं और नेत्रहीन थीं। उनके बारे में ऐसा कहा जाता है कि वे सैय्यद सजार मसूद गाजी साहब की मजार पर जियारत करने बहराइच गयी थीं और वहीं पर उनके नेत्र ठीक हो गये और वे पुनः देखने लगीं। बाद में उनकी मृत्यु बहराइच में ही मात्र 18 वर्ष की उम्र में हो गयीं तथा वहीं उनका मजार बनाया गया। कालान्तर में उनका मकबरा रुदौली में बनाया गया। ये सूफी–साधक भी अवध की ग्रामीण जनता की श्रद्धा का केन्द्र थी। इस स्थान पर आज भी हर वर्ष ज्येष्ठ मास के प्रथम रविवार को उर्स का आयोजन किया जाता है। जिसमें हिन्दू–मुस्लिम दोनों ही जातियों के लोग समान रूप से इसमें बढ़–चढ़कर भाग लेते हैं।

शाह अब्दुल हक

रुदौली (बाराबंकी) में दूसरा विख्यात मजार मखदूम शाह अब्दुल हक का है। इनकी मजार पर भी प्रत्येक वर्ष उर्स का आयोजन होता था तथा लोग दूर–दूर से यहाँ आते थे और श्रद्धाभाव से वस्त्र, अन्न व मुद्रा चढ़ाते थे।[29]

इसी प्रकार देवा (बाराबंकी) में महान् सूफी हाजी वारिस अली शाह, सतरिख में सैय्यद सालार साहू विलग्राम में ख्वाजा अमादुद्दीन विलग्रामी, सैय्यद बरकतुल्लाहे, मीर अब्दुल जलील, मीर अब्दुल वाहित, कछौछा में सैय्यद अशरफ जहाँगीर की दरगाह थी, जहाँ पर उर्स तथा मेलों का आयोजन किया जाता था। यहाँ इनकी दरगाहों पर बड़ी संख्या में हर धर्म के लोग इकट्ठा होकर अपने लिए दुआ करते थे व मन्नतें माँगते थे। इसके साथ ही लखनऊ के शेख हन्जा शेख मुहम्मद कलन्दर, शेख ताजुद्दीन, खैराबाद के शेख–उल–हिंदवा, प्रसिद्ध सूफी सन्त थे,[30] जो कि अवध की ग्रामीण जनता के आस्था के केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध थे।

इस प्रकार सम्पूर्ण अवध के क्षेत्र में सूफी सन्तों के मजारों पर जिस दिन उनका देहान्त होता था। उसी दिन प्रत्येक वर्ष बड़ी धूम–धाम व हर्षोल्लास से उर्स का आयोजन होता था, जो कि आज भी अनवरत रूप से चल रहा है। उर्स का आयोजन सामान्यतः तीन दिन तक किया जाता था। सूफी सन्त के अनुयायी व मुरीद कुरान पढ़ते, फातहा कराते और चादरें चढ़ाते थे। इस अवसर पर दरगाह पर कव्वाली का आयोजन किया जाता था व हर धर्म के लोग इस आयोजन में बढ़–चढ़ कर शिरकत करते थे। सूफी–सन्त की कब्र के समीप इत्र व अगरबत्ती सुलगाये जाते थे, जिसकी सुगन्ध से पूरी दरगाह सुगन्धित हो जाती थी। दरगाह पर विभिन्न रंगं की छोटी–बड़ी शमें, फानूस तथा कन्दीलें रोशन की जाती थी।[31] वैसे तो वर्ष के प्रत्येक माह में इन दरगाहों पर लोग आते थे, किन्तु उर्स के अवसर पर दरगाहों में विशेष भीड़ होती थी। इन उर्सों का आयोजन आज भी प्रचलित है।

वास्तव में भक्ति आन्दोलन के सन्त, सूफी सन्त व अन्य सम्प्रदायों से सम्बन्धित सन्त, हिन्दू–मुस्लिम एकता के दूत के रूप में थे। हिन्दू–मुस्लिम दोनों ही सम्प्रदायों के लोग इन सन्तों की शिक्षाओं से प्रेरित होते थे व इनके मुरीद होते थे।

संदर्भ :

1. वही, पृ0 168, तिवारी, राम पूजन, पृ0 166, सूफीमत साधना और साहित्य
2. वही, पृ0 166
3. सिंह, रामफल; हिन्दू–मुस्लिम सांस्कृतिक एकता का इतिहास, पृ0 204
4. निजामी, के0ए0, सम आस्पेक्टस आफ रिलीजन एण्ड पालिटिक्स इन इण्डिया ड्यूरिंग दि थर्टीन्थ सेन्चुरी, पृ0 52
5. तिवारी, रामपूजन, पूर्वोद्धृत, पृ0 177
6. सिंह, रामफल, पूर्वोद्धृत, पृ0 204
7. वही, पृ0 204
8. तिवारी, रामपूजन, पूर्वोद्धृत, पृ0 258
9. मेनन, शिवशंकर द्वारा लिखित लेख, मुगल काल में सूफी आन्दोलन, उद्धृत हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, भाग–2, पृ0 156
10. तिवारी, रामपूजन, पूर्वोद्धृत, पृ0 256
11. मेनन, शिवशंकर, पूर्वोद्धृत, पृ0 156–157
12. भंडारी, सुजान राय, खुलासन उल तवारीख, पृ0 44, उद्धृत, रेहाना बेगम, पूर्वोद्धृत, पृ0 117
13. बेगम, रेहाना, पूर्वोद्धृत, पृ0 117
14. बेगम, रेहाना, पूर्वोद्धृत, पृ0 117
15. सहाय, मुंशी राम तमन्ना, अफजल–उल–तवारीख, भाग–2, पृ0 170, उद्धृत, बेगम रेहाना, पूर्वोद्धृत, पृ0 118
16. बरनी, तारीखे फिरोजशाही, पृ0 481, खुसरो : एजाजे खुसरबी, खण्ड–2, पृ0 155 भी देखिए। गजनवी युग की किसी समकालीन रचना में सालार मसूद का कोई सन्दर्भ नहीं मिलता। उत्बी के अनुसार सुल्तान महमूद ने गंगा नदी पार करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। सालार मसूद के सुल्तान महमूद से सम्बन्ध बाद की मनगढ़ंत कथा हो सकती है। उसने 11वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतवर्ष में प्रवेश किया होगा। उद्धृत, निजामी, खालिक अहमद व हबीब, मुहम्मद, दिल्ली सल्तनत, खण्ड–5, पृ0 121, 161
17. हबीब एवं निजामी, पूर्वोद्धृत, पृ0 487–508
18. बेगम, रेहाना, पूर्वोद्धृत, पृ0 118
19. रिजवी, एस0ए0ए, मुस्लिम रिवाइवलिस्ट मूवमेण्ट इन नार्दन इण्डिया इन सिक्सटीन्थ एण्ड सेवेन्टीन्थ सन्चुरीज, पृ0 333
20. वही, पृ0 334
21. भंडारी, सुजानराय, पूर्वोद्धृत, पृ0 44, उद्धृत, रेहाना बेगम, पूर्वोद्धृत, पृ0 116
22. बेगम, रेहाना, पूर्वोद्धृत, पृ0 118
23. सैय्यद अशरफ पीर पियारा, तिन्ह मोहिं पंथ दीन्ह उजियारा।।
    लेसा हियें प्रेम कर दिया, उठी ज्योति या निर्मल हिया।।
    पद्मावत, जायसी ग्रन्थावली, सम्पादक– डॉ0 माला प्रसाद गुप्त, छन्द 18
24. (अ) महदी गुरु लेख दुरहान्, कालिप नगर तेहिक अस्थान।
    जायसी कृत चित्र रेखा, पृ0 74 (सम्पादक– पं0 शिव सहाय पाठक, वाराणसी, 1953)
25. (आ) अगुआ भएउ सेख बुरहानू, पंथ लाइ जेहिं दीन्ह गिआनू।
    पद्मावत, 20/2, उद्धृत, पाण्डेय, पूर्वोद्धृत, पृ0 77
26. रिजवी, एस0ए0ए0, पूर्वोद्धृत, पृ0 173
27. शुक्ल, पण्डित रामचन्द्र, पद्मावत, भूमिका, पृ0 28
28. बेगम रेहाना, पूर्वोद्धृत, पृ0 116
29. बेगम रेहाना, पूर्वोद्धृत, पृ0 118
30. वही, पृ0 118
31. नेबिल, एच0आर0, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर बाराबंकी, भाग–65, पृ0 54
32. बेगम, रेहाना, पूर्वोद्धृत, पृ0 119
33. वही, पृ0 120

●